हर महिला की कहानी मेरी कहानी!

महिलाओं की प्रगति में मेरी आस्था।

द्रौपदी मुर्मु
भारत की राष्ट्रपति

गत वर्ष संविधान दिवस के अवसर पर, मैं भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा आयोजित समारोह में समापन भाषण दे रही थी। न्याय के बारे में बात करते हुए, मुझे अंडर-ट्रायल कैदियों का खयाल आया और उनकी दशा के बारे में विस्तार से बोलने से मैं स्वयं को रोक नहीं पाई। मैंने अपने दिल की बात कही और उसका प्रभाव भी पड़ा। आज, अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर, मैं आपके साथ, उसी तरह, कुछ विचार साझा करना चाहती हूं जो सीधे मेरे दिल की गहराइयों से निकले हैं।

मैं बचपन से ही, समाज में महिलाओं की स्थिति को लेकर व्याकुल रही हूं। एक ओर तो, एक बच्ची को हर तरफ से ढेर सारा प्यार-दुलार मिलता है और शुभ अवसरों पर उसकी पूजा भी की जाती है। वहीं दूसरी ओर, उसे जल्दी ही यह

आभास हो जाता है कि उसकी उम्र के लड़कों की तुलना में, उसके जीवन में, कम अवसर और संभावनाएं उपलब्ध हैं। एक ओर तो, महिलाओं को उनकी सहज बुद्धिमत्ता के लिए आदर मिलता है, यहां तक कि पूरे कुटुंब में सब का ध्यान रखने वाली, परिवार की धुरी के रूप में उसकी सराहना भी की जाती है। वहीं दूसरी ओर, परिवार से सम्बद्ध, यहां तक कि उसके ही जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण निर्णयों में, यदि उसकी कोई भूमिका होती भी है, तो अत्यंत सीमित होती है।

विगत वर्षों के दौरान - घर के बाहर के वातावरण में - पहले एक छात्रा, उसके बाद एक अध्यापिका और बाद में एक समाज-सेविका के रूप में - मैं इस तरह के विरोधाभास-पूर्ण रवैये से हैरान हुए बिना नहीं रह सकी हूं। कभी-कभी मैंने महसूस किया है कि व्यक्तिगत स्तर पर, हममें से अधिकांश लोग, पुरुषों और महिलाओं की समानता को स्वीकार करते हैं। लेकिन, सामूहिक स्तर पर, वही लोग हमारी आधी आबादी को सीमाओं में बांधना चाहते हैं। अपने अब तक के जीवन-काल के दौरान मैंने अधिकांश व्यक्तियों को समानता की प्रगतिशील अवधारणा की ओर बढ़ते देखा है। हालांकि, सामाजिक स्तर पर, पुराने रीति-रिवाज और परंपराएं, पुरानी आदतों की तरह, हमारा पीछा नहीं छोड़ रही हैं।

यही, विश्व की सभी महिलाओं की व्यथा-कथा है। धरती-माता की हर दूसरी संतान यानि महिला, अपना जीवन बाधाओं के बीच शुरू करती है। इक्कीसवीं सदी में, जब हमने हर क्षेत्र में कल्पनातीत प्रगति कर ली है, वहीं आज तक कई देशों में कोई महिला राष्ट्र अथवा शासन की प्रमुख नहीं बन सकी है। दूसरे सीमांत पर, दुर्भाग्यवश, दुनिया में ऐसे स्थान भी हैं जहां आज तक महिलाओं को मानवता का निम्नतर हिस्सा माना जाता है; और स्कूल जाना भी एक लड़की के लिए जिंदगी और मौत का सवाल बन जाता है!

लेकिन ऐसा सदैव नहीं रहा है। भारत में, ऐसे काल-खंड भी रहे हैं, जब महिलाएं निर्णय लिया करती थीं। हमारे शास्त्रों और इतिहास में ऐसी महिलाओं का उल्लेख मिलता है जो अपने शौर्य, विद्वत्ता या प्रभावी प्रशासन के लिए जानी

जाती थीं। आज एक बार फिर, अनगिनत महिलाएं, अपने चुने हुए क्षेत्रों में कार्य करके, राष्ट्र निर्माण में योगदान दे रही हैं। वे कॉर्पोरेट इकाइयों का नेतृत्व कर रही हैं और यहां तक कि सशस्त्र बलों में भी अपनी सेवाएं दे रही हैं। अंतर केवल इतना है कि उन्हें एक साथ दो कार्यक्षेत्रों में अपनी योग्यता तथा उत्कृष्टता सिद्ध करनी पड़ती है - अपने करियर में भी और अपने घरों में भी। वे शिकायत भी नहीं करती हैं, लेकिन समाज से केवल इतनी आशा तो जरूर करती हैं कि वह उन पर भरोसा करे।

कुल मिलाकर एक विचित्र स्थिति उत्पन्न हुई है। हमारे यहां, जमीनी स्तर पर निर्णय लेने वाली संस्थाओं में महिलाओं का अच्छा प्रतिनिधित्व है। लेकिन जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर बढ़ते हैं, महिलाओं की संख्या क्रमशः घटती जाती है। यह तथ्य राजनीतिक संस्थाओं के संदर्भ में भी उतना ही सच है जितना ब्यूरोक्रेसी, न्यायपालिका और कॉर्पोरेट जगत के लिए। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिन राज्यों में साक्षरता दर बेहतर है वहां भी यही स्थिति देखने को मिलती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि केवल शिक्षा के द्वारा ही महिलाओं की आर्थिक और राजनीतिक आत्म-निर्भरता को सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है।

इसलिए, मेरा दृढ़ विश्वास है कि समाज में व्याप्त मानसिकता को बदलने की जरूरत है। एक शांतिपूर्ण और समृद्ध समाज के निर्माण के लिए, महिला-पुरुष असमानता पर आधारित जड़ीभूत पूर्वाग्रहों को समझना तथा उनसे मुक्त होना जरूरी है। सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देने के लिए सुविचारित प्रयास किए गए हैं। परंतु ये प्रयास, महिलाओं का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की दिशा में पर्याप्त सिद्ध नहीं हुए हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षा प्राप्त करने तथा नौकरियां हासिल करने में, महिलाएं पुरुषों की तुलना में बहुत पीछे रहती हैं। उनके इस पिछड़ेपन का कारण सामाजिक रूढ़ियां हैं न कि कोई साजिश।

मैं देश के विभिन्न हिस्सों में, अनेक दीक्षांत समारोहों में शामिल हुई हूं। और मैंने देखा है कि यदि महिलाओं को अवसर मिलता है, तो वे शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों से प्रायः आगे निकल जाती हैं। भारतीय महिलाओं तथा हमारे समाज की इसी

अदम्य भावना के बल पर मुझे विश्वास होता है कि भारत, महिला-पुरुष के बीच न्याय के मार्ग पर विश्व-समुदाय का पथ-प्रदर्शक बनेगा।

ऐसा हरगिज नहीं है कि आधी मानवता, अर्थात पुरुषों ने, दूसरे आधे हिस्से, यानि महिलाओं को, पीछे रखकर कोई बढ़त हासिल की है। सच तो यह है कि यह असंतुलन पूरी मानवता को हानि पहुंचा रहा है, क्योंकि मानवता के रथ के दोनों पहिए बराबर नहीं हैं। यदि महिलाओं को निर्णय लेने में शामिल किया जाता है तो न केवल आर्थिक प्रगति में, बल्कि जलवायु से जुड़ी कार्रवाई में भी तेजी आएगी। मुझे विश्वास है कि यदि महिलाओं को मानवता की प्रगति में बराबरी का भागीदार बनाया जाए तो हमारी दुनिया अधिक खुशहाल होगी।

मुझे पूरा विश्वास है कि हमारा भविष्य उज्ज्वल है। मैंने अपने जीवन में देखा है कि लोग बदलते हैं, नजरिया भी बदलता है। वास्तव में यही मानव-जाति की गाथा है; अन्यथा हम अब तक गुफाओं-कन्दराओं में ही रह रहे होते। महिलाओं की मुक्ति की कहानी धीमी गति से, प्रायः दुखदाई शिथिलता के साथ, आगे बढ़ी है, लेकिन यह यात्रा केवल सीधी दिशा में ही आगे बढ़ी है, कभी भी उल्टी दिशा में नहीं लौटी। इसीलिए, यह बात मेरे इस विश्वास को मजबूत बनाती है और मैं अक्सर कहती भी हूं कि भारत की स्वाधीनता की शताब्दी तक का 'अमृत काल' युवा महिलाओं का समय है।

मुझे यह तथ्य भी आशान्वित करता है कि एक राष्ट्र के रूप में हमने अपनी शुरुआत, महिला-पुरुष न्याय के ठोस आधार पर की है। लगभग एक सदी पहले, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, महात्मा गांधी के अभियानों से, महिलाओं को, घर की दहलीज पार करके, बाहर की दुनिया में कदम बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिला। उस समय से ही, हमारे पूरे समाज में, और विशेष रूप से महिलाओं में, एक बेहतर भविष्य के निर्माण की आकांक्षा विद्यमान रही है। महिलाओं के लिए हानिकारक पूर्वाग्रहों और रीति-रिवाजों को, कानून बनाकर अथवा जागरूकता के माध्यम से, दूर किया जा रहा है। इसका सकारात्मक प्रभाव प्रतीत होता है क्योंकि वर्तमान संसद में महिलाओं का प्रतिनिधित्व सबसे अधिक है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र की राष्ट्रपति के रूप में

मेरा चुनाव, महिला सशक्तीकरण की गाथा का एक अंश है। मेरा मानना है कि महिला-पुरुष न्याय को बढ़ावा देने के लिए “मातृत्व में सहज नेतृत्व” की भावना को जीवंत बनाने की आवश्यकता है। महिलाओं को प्रत्यक्ष रूप से सशक्त बनाने के लिए ‘बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ’ जैसे सरकार के अनेक कार्यक्रम, सही दिशा में बढ़ते हुए कदम हैं।

हमें इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए कि श्रेष्ठ तथा प्रगतिशील विचारों के साथ तालमेल बनाने में समाज को समय लगता है। लेकिन समाज मनुष्यों से ही बनता है - जिनमें आधी संख्या महिलाओं की होती है - और हम सब की, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति की, यह जिम्मेदारी है कि इस प्रगति को तेज गति प्रदान की जाए। इसलिए, आज मैं आप सबसे, प्रत्येक व्यक्ति से - अपने परिवार, आस-पड़ोस अथवा कार्यस्थल में एक बदलाव लाने के लिए स्वयं को समर्पित करने का आग्रह करना चाहती हूं - ऐसा कोई भी बदलाव जो किसी बच्ची के चेहरे पर मुस्कान बिखेरे, ऐसा बदलाव जो उसके लिए जीवन में आगे बढ़ने के अवसरों में वृद्धि करे। आपसे मेरा यह अनुरोध - जैसा कि मैंने शुरुआत में ही कहा है - सीधे मेरे हृदय की गहराइयों से निकला है।

[समाप्त]